

पटना उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार में

राज कुमार प्रसाद

बनाम

देव कुमार प्रसाद गुप्ता एवं अन्य

2015 की प्रथम अपील सं. 30

10 फरवरी 2023

(माननीय न्यायमूर्ति श्री राजीव रंजन प्रसाद)

विचार के लिए मुद्दा

क्या अपीलकर्ता ने वर्तमान अपील दायर करने में 3 वर्ष 11 माह और 3 दिन की देरी के लिए पर्याप्त कारण प्रस्तुत किया है, जैसा कि परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के अंतर्गत अपेक्षित है?

हेडनोट्स

अपीलकर्ता ने विलंब को केवल इस आधार पर समझाने का प्रयास किया है कि अंतिम डिक्री पारित होने के बाद उन्होंने वरिष्ठ दीवानी अधिवक्ता से सलाह ली थी। इस न्यायालय के लिए, बिना किसी ठोस सामग्री के इस कथन पर विश्वास करना संभव नहीं है। (पृष्ठ 7)

यह मानना कठिन है कि अपीलकर्ता, जिन्होंने अपने ही कथन के अनुसार अंतिम डिक्री पारित होने के बाद अपील दायर करने के विषय में आरा के अधिवक्ता से चर्चा की थी, परंतु लगभग 4 वर्षों तक पटना के अधिवक्ता से उसी विषय पर चर्चा करना उचित नहीं समझा और फिर एक दिन, अर्थात् 16.08.2015 को उन्होंने अपने पटना के अधिवक्ता को यह तथ्य बताया। (पृष्ठ 8)

यदि इस प्रकार के तर्क इस स्तर पर स्वीकार कर लिए जाएँ, तो कोई भी पक्षकार, जो अपने उपायों को साधने में सतर्क नहीं है, किसी निपटाए हुए मुद्दे को भी पुनः अस्थिर कर सकता है और इससे न्यायसंगत संतुलन बिगड़ेगा। (पृष्ठ 9)

दिखाए गए कारण माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों में निहित “उचित कारण” या “पर्याप्त कारण” की श्रेणी में नहीं आते। प्रस्तुत कारण असंतोषजनक हैं और उनमें सद्भावना का अभाव है। अतः अंतरिम आवेदन खारिज किया जाता है। परिसीमा-याचिका की खारिजी के परिणामस्वरूप यह अपील अस्तित्व में नहीं रहती। (पृष्ठ 18)

न्याय दृष्टान्त

परिमल बनाम वीना @ भारती, (2011) 3 एससीसी 545; मणिबेन देवराज शाह बनाम बृहन्मुंबई महानगरपालिका, (2012) 5 एससीसी 157; बलवंत सिंह (मृत) बनाम जगदीश सिंह एवं अन्य, (2010) 8 एससीसी 685; पेरुमोन भगवती देवस्वोम बनाम भार्गवी अम्मा, (2008) 8 एससीसी 321; रामलाल एवं अन्य बनाम रेवा कोलफील्ड्स लिमिटेड, एआईआर 1962 एससी 361; महाराष्ट्र राज्य (जल संसाधन विभाग) बनाम एम/एस बोर्से ब्रदर्स इंजीनियर्स एंड कंस्ट्रक्शन प्रा. लि., (2021) 6 एससीसी 460; अर्जुन सिंह बनाम मोहिंद्रा कुमार, एआईआर 1964 एससी 993; बसवराज एवं अन्य बनाम विशेष भूमि अधिग्रहण अधिकारी, (2013) 14 एससीसी 81

अधिनियमों की सूची

परिसीमा अधिनियम, 1963; दीवानी प्रक्रिया संहिता, 1908

मुख्य शब्दों की सूची

विलंब की माफी; पर्याप्त कारण; परिसीमा अधिनियम; अंतिम डिक्री; सद्भावनापूर्ण स्पष्टीकरण; न्यायालय का विवेक; न्यायिक सहानुभूति

प्रकरण से उत्पन्न

शीर्षक वाद संख्या 570/2003 में 10.08.2011 को पारित उप-न्यायाधीश द्वितीय, आरा की अंतिम डिक्री के विरुद्ध अपील।

पक्षकारों की ओर से उपस्थिति

अपीलकर्ता/ओं की ओर से : श्री अभिषेक कुमार, अधिवक्ता

उत्तरदाता/ओं की ओर से : श्री आदित्य कुमार सिंह-1, अधिवक्ता

रिपोर्टर द्वारा हेडनोट बनाया गया: अमित कुमार मल्लिक, अधिवक्ता

माननीय पटना उच्च न्यायालय का निर्णय/आदेश

पटना उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार में
2015 की प्रथम अपील सं. 30

=====

राज कुमार प्रसाद पिता-श्री राधा कृष्ण प्रसाद, निवासी- मोहल्ला-चौधरीयाना आरा, थाना-
आरा टाउन, जिला-भोजपुर

... .. अपीलकर्ता

बनाम

1. देव कुमार प्रसाद गुप्ता और अन्य, पिता-राधा कृष्ण गुप्ता, मोहल्ला-चौधरीयाना आरा, थाना-
आरा टाउन, जिला-भोजपुर
2. संजय कुमार प्रसाद
3. सुशील कुमार @ संतोष कुमार प्रसाद
4. सुनील कुमार प्रसाद
5. अनिल कुमार प्रसाद
6. राकेश कुमार प्रसाद
7. जनीश प्रसाद, सभी के पिता- श्री राधा कृष्ण प्रसाद
8. राधा कृष्ण प्रसाद, पिता- स्वर्गीय धनराज साह
9. श्री माटी सुशीला देवी, पति- राधा कृष्ण प्रसाद, सभी का मोहल्ला-चौधरीयाना आरा, थाना-
आरा टाउन, जिला-भोजपुर
10. प्रभा देवी, पति- राजेश कुमार, गाँव-अनैध, थाना-आरा टाउन, जिला-भोजपुर

... .. उत्तरदाता/गण

=====

उपस्थिति:

अपीलकर्ता/ओं की ओर से : श्री अभिषेक कुमार, अधिवक्ता

उत्तरदाता/ओं की ओर से : श्री आदित्य कुमार सिंह-1, अधिवक्ता

=====

कोरम: माननीय न्यायमूर्ति श्री राजीव रंजन प्रसाद

मौखिक आदेश

15 10 फरवरी 2023 2015 का आई. ए. सं. 10016

यह परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के तहत एक आवेदन है जिसमें

तत्काल अपील दायर करने में 3 साल 11 महीने और 3 दिन की देरी को माफ करने की

मांग की गई है।

वर्तमान अपील 2003 के स्वत्व वाद सं. 570 में विद्वान उप-न्यायाधीश-II, आरा द्वारा पारित अंतिम डिक्री दिनांक 10.08.2011 के खिलाफ दायर की गई है। इस न्यायालय को सूचित किया गया है कि 2003 के स्वत्व वाद सं. 570 में विद्वान न्यायालय द्वारा पारित प्रारंभिक डिक्री दिनांक 18.05.2010 को इस न्यायालय में 2005 के एफ. ए. सं. 160 के माध्यम से इस चुनौती दी गई है। उक्त अपील को पहले दिनांक 23.08.2013 के आदेश का पालन न करने के कारण खारिज कर दिया गया था, लेकिन उसके बाद इसे दिनांक 20.08.2014 के आदेश के माध्यम से बहाल कर दिया गया है।

वर्तमान अपील में देरी को माफ करने के उद्देश्य से, अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता प्रस्तुत करते हैं कि अंतिम डिक्री 10.08.2011 को पारित की गई थी, लेकिन विद्वान अधिवक्ता श्री रामधर राय, आरा बार एसोसिएशन के अधिवक्ता ने अपीलकर्ता को अंतिम डिक्री को चुनौती देने की सलाह नहीं दी थी। यह आगे कहा गया है कि अंतिम डिक्री की एक प्रमाणित प्रति 20.01.2014 को प्राप्त की गई थी लेकिन अपील 20.08.2015 को ही प्रस्तुत की जा सकी।

विद्वान अधिवक्ता प्रस्तुत करते हैं कि इस न्यायालय में 2010 के एफ. ए. सं. 160 में उसका प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अधिवक्ता से मिले, अंतिम डिक्री के संबंध में विद्वान अधिवक्ता के साथ चर्चा के दौरान, अपीलकर्ता ने अपने अधिवक्ता से कहा कि अंतिम डिक्री पारित कर दी गई है, जिसके बाद उसे इसे चुनौती देने की सलाह दी गई थी।

अपीलकर्ता का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अधिवक्ता श्री लक्ष्मण लाल पांडे ने परिमल बनाम वीणा @ भारती (2011) 3 एस. सी. सी. 545 के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के पैराग्राफ '16' पर भरोसा किया है यह प्रस्तुत करने के लिए सूचित किया कि देरी को माफ करने के उद्देश्य से, यह निर्णय करते समय कि क्या अपीलकर्ता पर्याप्त कारण दिखाने में सक्षम रहा है, इस न्यायालय को मामले की विविध

और विशेष परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करना होगा। न्यायालय को यह देखना होगा कि क्या अपीलकर्ता 'पर्याप्त कारण' दिखाने में सक्षम रहा है। यह तथ्य का सवाल होगा। विद्वान अधिवक्ता प्रस्तुत करते हैं कि सार्वभौमिक अनुप्रयोग का एक सीधा सूत्र नहीं हो सकता है जैसा कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **परिमल** (उपरोक्त) के मामले में माना गया है। उनके अनुसार, वर्तमान अपील दायर करने में देरी के लिए दिखाए गए कारण ऐसे हैं कि वे "पर्याप्त कारण" की श्रेणी में आते हैं, इसलिए उन्हें माफ कर दिया जाना चाहिए।

विद्वान अधिवक्ता ने आगे **मणिबेन देवराज शाह बनाम बृहन्मुंबई नगर निगम** 2012) 5 एस. सी. सी. 157 (पैराग्राफ 15, 23 और 27) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया है यह प्रस्तुत करने के लिए कि स्पष्टीकरण की वास्तविक प्रकृति को ध्यान में रखते हुए किसी दिए गए मामले में "पर्याप्त कारण" शब्द की जांच की जानी है और उन मामलों में जहां इस न्यायालय को पता चलता है कि देरी के लिए दिखाए गए कारण में वास्तविकता की कमी नहीं है, तो वह देरी को माफ कर सकता है। यह प्रस्तुत किया जाता है कि वर्तमान मामले में दिखाया गया कारण वास्तविक है और लगभग 4 साल की देरी हुई है क्योंकि अपीलकर्ता को विद्वान अधिवक्ता द्वारा उचित सलाह नहीं दी गई थी जिन्होंने आरा में दीवानी न्यायालय में मामले का संचालन किया था।

उत्तरदाताओं की ओर से प्रस्तुतियाँ

उत्तरदाताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री आदित्य नारायण सिंह ने इस आवेदन का कड़ा विरोध किया है। उत्तरदाताओं की ओर से एक जवाबी हलफनामा भी दायर किया गया है। यह प्रस्तुत किया जाता है कि विलंब की माफी की मांग करने वाले आवेदन में अपीलकर्ता द्वारा ली गई विस्तृत याचिका में ईमानदारी का अभाव है। विद्वान अधिवक्ता प्रस्तुत करते हैं कि भले ही देरी की माफी की मांग करने वाली याचिका में बार के एक

वरिष्ठ अधिवक्ता के नाम का उल्लेख किया गया है, यह कहते हुए कि उन्होंने अंतिम डिक्री के खिलाफ अपील दायर करने की सलाह नहीं दी थी, लेकिन ऐसे बयान केवल बेबुनियाद बयान हैं जिनकी कोई पवित्रता नहीं है और यदि इस तरह के स्पष्टीकरण की अनुमति दी जाती है, तो अधिवक्ता का कोई प्रमाण पत्र/राय न होने के कारण, किसी भी बेईमान और लापरवाही वाले वादी के लिए सुलझे हुए विवाद को बिगाड़ने का मौका मिल जायेगा और लंबे समय के बाद भी एक मामला फिर से शुरू हो जाएगा।

विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि यह रिकॉर्ड में दर्ज है कि यह अपीलकर्ता अपने पिता और अन्य भाइयों के खिलाफ मुकदमा लड़ रहा है। डिक्री पिता और अन्य भाइयों के पक्ष में पारित की गई है लेकिन अपीलकर्ता नहीं चाहता कि उन्हें डिक्री का लाभ मिले। आरा के विद्वान जिला न्यायालय में 2011 के निष्पादन वाद सं. 10 को जन्म देने वाला एक निष्पादन वाद लगाया गया था, हालांकि, अपीलकर्ता द्वारा निष्पादन कार्यवाही में कानून की प्रक्रिया को दरकिनार करने के लिए सभी संभव प्रयास किए जा रहे हैं। लगभग 4 वर्षों के बाद वर्तमान अपील दायर करना अपीलकर्ता की ओर से इस तरह के प्रयास की दिशा में केवल एक कदम है।

विद्वान अधिवक्ता प्रस्तुत करते हैं कि यह विश्वास करने योग्य नहीं है कि आरा के एक व्यवहार न्यायालय में प्रतिष्ठित एक वरिष्ठ अधिवक्ता अपीलकर्ता को अंतिम डिक्री के खिलाफ अपील दायर करने की सलाह नहीं देगा। इस संबंध में बयान केवल झूठे, मनगढ़ंत और आधारहीन हैं जिन्हें कोई महत्व देने की आवश्यकता नहीं है।

यह आगे प्रस्तुत किया जाता है कि इस न्यायालय में लंबित 2010 की प्रथम अपील सं.160 को 23.08.2013 को या उसके आसपास खारिज कर दिया गया था, इसके बाद पुनर्स्थापना आवेदन 2014 का एम जे सी सं. 688 के रूप में दायर किया गया था जिसे 20.08.2014 को अनुमति दी गई थी। पुनर्स्थापना के लिए आवेदन 11.02.2014 को दायर किया गया था, इसलिए, इस अवधि के दौरान जब अपीलकर्ता के पास पहले से ही

अंतिम डिक्री की प्रमाणित प्रति थी जो उसने 20.01.2014 को प्राप्त की थी, तो यह समझना मुश्किल है कि वह अपने अधिवक्ता के साथ इस पर चर्चा नहीं कर सका। तथ्य यह है कि अंतिम डिक्री 11.08.2011 को ही तैयार किया गया था। उनके अनुसार, अपीलकर्ता द्वारा निर्धारित तिथि जिससे यह पता चलता है कि 16.08.2015 को उन्होंने पटना में अपने अधिवक्ता से मामले के बारे में पूछताछ की थी और उनके साथ चर्चा के दौरान ये बातें सामने आई, विश्वसनीय नहीं हैं। ये देरी को माफ करने के लिए केवल बहाने हैं। यह प्रस्तुत किया जाता है कि समता का सिद्धांत भी यह माँग करता है कि जो कुछ तय किया गया है उसे अस्थिर नहीं होने दिया जाना चाहिए और जो अधिकार किसी एक पक्ष को प्राप्त हुआ है, उसे विलंब के मामले में उदार दृष्टिकोण के नाम पर कोई सहानुभूति दिखाकर छीना नहीं जाना चाहिए।

विद्वान अधिवक्ता ने माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों पर भरोसा किया है। पहला फैसला बलवंत सिंह (मृत) बनाम जगदीश सिंह और अन्य, (2010) 8 एससीसी 685 में दर्ज के मामले में है। इस न्यायालय का ध्यान **पेरुमन भगवती देवस्वोम बनाम भार्गवी अम्मा** (2008) 8 एस. सी. सी. 321 (पैराग्राफ 9) और **रामलाल और अन्य बनाम रीवा कोलफील्ड्स लिमिटेड ए आई आर 1962 एससी 361 (पैराग्राफ-7)** में दर्ज मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय की टिप्पणियों की ओर आकर्षित किया गया है

विद्वान अधिवक्ता ने **महाराष्ट्र सरकार (जल संसाधन विभाग)** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भी भरोसा किया है जिसका प्रतिनिधित्व **निष्पादन अभियंता बनाम मेसर्स बोर्स ब्रदर्स इंजीनियर्स एंड कंस्ट्रक्शन प्राइवेट लिमिटेड** द्वारा किया गया था, जो (2021) 6 एस. सी. सी. 460 में रिपोर्ट किया गया था।

विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कई अवसरों पर यह अभिनिर्धारित किया है कि परिसीमा कानून किसी विशेष पक्ष को कठोर रूप से प्रभावित कर सकता है, लेकिन इसे अपनी सभी कठोरताओं के साथ लागू किया जाना

चाहिए जब क़ानून इस तरह निर्धारित करता है और न्यायालय के पास न्यायसंगत आधार पर परिसीमा की अवधि बढ़ाने की कोई शक्ति नहीं है। यह प्रस्तुत किया जाता है कि देरी की माफी की मांग करने वाले आवेदन को खारिज कर दिया जाए।

विचार करें

पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने और अभिलेखों तथा इस विषय पर न्यायिक निर्णयों का अवलोकन करने के बाद, इस न्यायालय ने पाया कि इस मामले में अपील दायर करने में 3 साल 11 महीने और 3 दिन की देरी हुई है। अपीलकर्ता ने देरी को केवल इस आधार पर स्पष्ट करने की मांग की है कि अंतिम डिक्री पारित करने के बाद उन्होंने आरा बार एसोसिएशन के अधिवक्ता वरिष्ठ सिविल अधिवक्ता श्री रामधर राय से सलाह ली थी, लेकिन उन्होंने दिनांक 10.08.2011 की अंतिम डिक्री को चुनौती देने की सलाह नहीं दी थी। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता के नाम पर दिए गए इस स्पष्ट बयान को छोड़कर, रिकॉर्ड में किसी भी रूप में ऐसी कोई सामग्री नहीं है जो यह दर्शाती हो कि व्यवहार न्यायालय का एक वरिष्ठ अधिवक्ता वादी को अंतिम डिक्री के खिलाफ अपील दायर नहीं करने की सलाह देगा। इस न्यायालय के अनुसार, यह कथन बिना किसी ठोस आधार के विश्वास पैसा नहीं करेगा।

इसके अलावा यह एक स्वीकृत स्थिति है कि 2010 की एफ. ए. सं.160 को पहले इस न्यायालय के आदेश का पालन न करने के कारण खारिज कर दिया गया था। इस मामले की पुनर्स्थापना के उद्देश्य से, अपीलकर्ता ने पटना में अपने अधिवक्ता से मुलाकात की और 11.02.2014 को 2014 का एम जे सी सं. 688 के रूप में एक पुनर्स्थापना आवेदन दायर किया, जिसकी अनुमति 20.08.2014 को दी गई थी। यह अपीलकर्ता का मामला नहीं है कि इस अवधि के दौरान जब वह पटना में अपने अधिवक्ता से मिले तो अंतिम आदेश के बारे में कुछ भी चर्चा नहीं की गई। अपीलकर्ता का मामला यह है कि जब उसने 2010 के एफ. ए. सं. 160 के बारे में 16.08.2015 को पूछताछ की

तो उस चर्चा के दौरान अंतिम डिक्री पारित करने की जानकारी विद्वान अधिवक्ता को दी गई जिसने उसे अपील दायर करने की सलाह दी। फिर से इस न्यायालय ने पाया कि इस याचिका को एक प्रामाणिक याचिका नहीं कहा जा सकता है क्योंकि यह विश्वास करना मुश्किल है कि अपीलकर्ता जिसने अपने स्वयं के बयान के अनुसार अंतिम डिक्री पारित करने के बाद आरा में अपने अधिवक्ता के साथ अपील दायर करने के मामले पर चर्चा की थी, लेकिन लगभग 4 साल तक पटना में अपने अधिवक्ता के साथ उसी मामले पर चर्चा करना उचित और उपयुक्त नहीं समझा और फिर एक दिन यानी 16.08.2015 को उसने पटना में अपने अधिवक्ता को इस तथ्य से अवगत कराया।

यह न्यायालय उत्तरदाताओं के लिए विद्वान अधिवक्ता की दलीलों से सहमत है कि यदि इस स्तर पर ऐसी विशिष्ट दलीलें यदि स्वीकार कर ली जाती हैं, हो इससे एक ऐसे वादी को अनुमति दी जाएगी जो किसी भी सुलझे हुए मुद्दे को हल करने के लिए अपने उपायों को आगे बढ़ाने में सतर्क नहीं है और यह समानता को बाधित करेगा।

जहाँ तक अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा जिन निर्णयों पर भरोसा किया गया है, उनका संबंध है, **परिमल** (उपरोक्त) के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय आदेश IX नियम 13 दं. प्र. सं. के तहत एक आवेदन के संदर्भ में विचार कर रहा था कि क्या प्रतिवादी ईमानदारी से और निष्ठा से उपस्थित रहने का इरादा रखता है जब मुकदमा सुनवाई के लिए बुलाया गया था और ऐसा करने के लिए अपनी पूरी कोशिश की। उक्त परीक्षण को लागू करते समय माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा, "पर्याप्त कारण इस प्रकार है कि प्रतिवादी को उसकी अनुपस्थिति के लिए दोषी नहीं ठहराया जा सकता है। इसलिए, आवेदक को उचित बचाव के साथ न्यायालय का दरवाजा खटखटाना चाहिए। पर्याप्त कारण तथ्य का सवाल है और न्यायालय को मामले में विभिन्न और विशेष परिस्थितियों में अपने विवेक का प्रयोग करना पड़ता है। सार्वभौमिक अनुप्रयोग का एक तथ्यशुदा सूत्र नहीं हो सकता है।"

मनीबेन देवराज शाह (उपरोक्त) के एक अन्य मामले में जिस पर अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा भरोसा किया गया था, माननीय सर्वोच्च न्यायालय इस बात पर विचार कर रहा था कि क्या बृहन्मुंबई नगर निगम द्वारा निर्णय और डिक्री के खिलाफ अपील दायर करने में 7 साल और 108 दिनों की देरी को माफ करने के लिए कारण परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के अर्थ के भीतर पर्याप्त कारण दिखाया गया है। उच्च न्यायालय ने देरी को माफ कर दिया था। माननीय उच्च न्यायालय के आदेश को माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई थी। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने देरी के लिए दिखाए गए कारण की जांच की और अंततः पैराग्राफ 29 में निम्नानुसार निर्णय दिया:-

“29. दुर्भाग्य से, उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश ने कागजों के गम हो जाने और इस बात का स्पष्टीकरण न देने के बारे में निगम द्वारा गढ़ी गई कहानी में मौजूद खामियों को पूरी तरह से नजरअंदाज कर दिया कि किसी ने भी 7 साल से अधिक समय तक फैसले की प्रमाणित प्रतियों को जारी करने के लिए आवेदन दायर करने की जहमत क्यों नहीं उठाई। हमारे विचार में, निगम द्वारा अपील दायर करने में देरी के लिए दिखाया गया कारण, कम से कम, पूरी तरह से असंतोषजनक था और विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा 7 साल से अधिक की देरी को माफ करने के लिए दिए गए कारणों को सीमा अधिनियम की धारा 5 के तहत न्यायालय द्वारा विवेक के प्रयोग के लिए खराब माफी के रूप में ही माना जा सकता है।

मणिबेन देवराज शाह (उपरोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के पैराग्राफ '23' और '24' पर अपीलकर्ता के लिए विद्वान अधिवक्ता द्वारा बहुत अधिक निर्भरता रखी गई है, इसलिए, यह न्यायालय उन पैराग्राफ को यहाँ नीचे पुनः

प्रस्तुत करना उचित और उपयुक्त समझता है:-

“23. जिस बात पर जोर दिए जाने की आवश्यकता है, वह यह है कि भले ही सीमा अधिनियम की धारा 5 और इसी तरह के अन्य कानूनों के तहत शक्ति के प्रयोग में एक उदार और न्याय-उन्मुख दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता है। न्यायालय इस तथ्य से अनजान नहीं हो सकती हैं कि सफल वादी ने चुनौती के तहत निर्णय के आधार पर कुछ अधिकार हासिल कर लिए हैं और मुकदमेबाजी के विभिन्न चरणों में लागत के अलावा बहुत समय लगता है।

24. किसी दिए गए मामले के तथ्यात्मक मैट्रिक्स में "पर्याप्त कारण" अभिव्यक्ति को क्या रंग मिलेगा, यह काफी हद तक स्पष्टीकरण की प्रामाणिक प्रकृति पर निर्भर करेगा। यदि न्यायालय को लगता है कि आवेदक की ओर से कोई लापरवाही नहीं की गई है और देरी के लिए दिखाए गए कारण में ईमानदारी की कमी नहीं है, तो वह देरी को माफ कर सकती है। दूसरी ओर, यदि आवेदक द्वारा दिया गया स्पष्टीकरण मनगढ़ंत पाया जाता है या वह अपने कारण पर मुकदमा चलाने में पूरी तरह से लापरवाही करता है, तो देरी को माफ नहीं करना विवेक का एक वैध प्रयोग होगा।”

इस न्यायालय को माननीय सर्वोच्च न्यायालय के उपरोक्त निर्णयों से उत्पन्न कानूनी प्रस्तावों की सराहना करने में कोई कठिनाई नहीं है। अंतिम विश्लेषण में, यह किसी दिए गए मामले का तथ्यात्मक मैट्रिक्स है जिस पर काफी हद तक स्पष्टीकरण की प्रामाणिक प्रकृति निर्भर करेगी।

बलवंत सिंह (उपरोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय, जिस पर उत्तरदाताओं के लिए विद्वान अधिवक्ता द्वारा भरोसा किया गया है, यह दर्शाता है

कि उक्त मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से अभिनिर्धारित किया है कि परिसीमा कानून किसी विशेष पक्ष को कठोरता से प्रभावित कर सकती है, लेकिन इसे अपनी सभी कठोरताओं के साथ लागू करना पड़ता है जब कानून इस तरह निर्धारित करता है और न्यायालय के पास न्यायसंगत आधार पर सीमा की अवधि बढ़ाने की कोई शक्ति नहीं होती है। यह अभिनिर्धारित किया गया कि इस प्रकार, उच्च न्यायालय द्वारा प्रयोग किया गया विवेकाधिकार न तो उचित था और न ही न्यायसंगत। देरी को माफ करने के आदेश को कायम नहीं रखा जा सकता है। यह न्यायालय **पेरुमोन भगवती देवस्वोम** (उपरोक्त) के निर्णय से पैराग्राफ '9' को इस प्रकार उद्धृत करने के लिए प्रेरित है

“9. इस न्यायालय ने राम चरण [ए. आई. आर. 1964 एस. सी. 215] में यह आरोप लगाने के अलावा कि अपीलकर्ता-वादी को मृत्यु के बारे में जानकारी नहीं है, उचित समय के भीतर मृत्यु के बारे में नहीं जानने के कारणों के बारे में स्पष्टीकरण देने की आवश्यकता के बारे में कुछ टिप्पणियां भी की। उन टिप्पणियों को बाद में नियम 4 में उप-नियम (5) को शामिल करने और 1976 के संशोधन अधिनियम 104 द्वारा आदेश 22 दं. प्र. सं. में नियम 10-ए को जोड़ने के मद्देनजर कम कर दिया गया है, जिसमें (i) न्यायालय को देरी की माफी के लिए पर्याप्त कारण के रूप में मृत्यु की अज्ञानता पर ध्यान देने की आवश्यकता है, (ii) मृतक पक्ष के अधिवक्ता को अपने मुवक्किल की मृत्यु के बारे में न्यायालय को सूचित करने की आवश्यकता है।”

इस स्तर पर, **रामलाल और अन्य** (उपरोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर ध्यान देने की आवश्यकता है। उक्त मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने इस बात पर जोर दिया कि पर्याप्त कारण दिखाए जाने के बाद भी एक पक्ष अधिकार के रूप में विचाराधीन देरी की माफी का हकदार नहीं है। पर्याप्त कारण का प्रमाण धारा 5 द्वारा

न्यायालय को प्रदत्त विवेकाधीन अधिकारिता के प्रयोग के लिए एक पूर्ववर्ती शर्त है। रामलाल और अन्य के मामले में दिए गए निर्णय के अनुच्छेद '7' को तत्काल संदर्भ के लिए यहां पुनः प्रस्तुत किया जा रहा है:-

"7. धारा 5 की व्याख्या करते समय दो महत्वपूर्ण विचारों को ध्यान में रखना प्रासंगिक है। पहला विचार यह है कि अपील करने के लिए निर्धारित समय सीमा की अवधि की समाप्ति डिक्री धारक के पक्ष में पक्षकारों के बीच डिक्री को बाध्यकारी मानने के अधिकार उत्पन्न करती है। दूसरे शब्दों में, जब निर्धारित सीमा की अवधि समाप्त हो जाती है, तो डिक्री धारक को समय सीमा कानून के तहत डिक्री को चुनौती से परे मानने का लाभ प्राप्त हो जाता है, और यह कानूनी अधिकार जो समय बीतने पर डिक्री धारक को प्राप्त हुआ है, उसे हल्के में नहीं लिया जाना चाहिए। अन्य विचार जिसे नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है, वह यह है कि यदि देरी के लिए पर्याप्त कारण दिखाया जाता है तो न्यायालय को देरी को माफ करने और अपील को स्वीकार करने का विवेकाधिकार दिया जाता है। यह विवेकाधिकार जानबूझकर न्यायालय को दिया गया है ताकि इस सम्बन्ध में न्यायिक शक्ति और विवेकाधिकार का प्रयोग तात्त्विक न्याय को आगे बढ़ाने के लिए किया जा सके। जैसा कि मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा *कृष्णा बनाम चथप्पन* [(1890) आई. एल. आर. मद 269] में कहा गया है, "धारा 5 न्यायालय को एक विवेकाधिकार देती है जिसका उपयोग अधिकारिता के संबंध में प्रयोग उसी प्रकार किया जाना चाहिए जिस तरह से न्यायिक शक्ति और विवेकाधिकार का प्रयोग उन सिद्धांतों पर किया जाना चाहिए जो अच्छी तरह से समझे जाते हैं; शब्द 'पर्याप्त कारण'

एक उदार व्याख्या प्राप्त करते हैं ताकि तात्त्विक न्याय को आगे बढ़ाया जा सके जब कोई लापरवाही या निष्क्रियता या ईमानदारी की कमी अपीलकर्ता के लिए आरोप योग्य नहीं है।”

इसके अलावा, मैं **बलवंत सिंह** (उपरोक्त) के मामले में पैराग्राफ '16' में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि न्यायालय को पक्षकारों के आचरण, देरी को माफ करने के वास्तविक कारणों और को भी ध्यान में रखना चाहिए कि क्या सामान्य सावधानी और सावधानी के साथ काम करने वाले आवेदक द्वारा इस तरह की देरी से आसानी से बचा जा सकता है। पैराग्राफ '16', इस प्रकार, यहाँ नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया है:-

“16. एक बार कार्यवाही समाप्त हो जाने के बाद, वाद को अनिवार्य रूप से समाप्त होना पड़ता है, सिवाय इसके कि जब उपशमन को रद्द कर दिया जाता है और कानूनी प्रतिनिधियों को आदेश 22 नियम 9 (3) दं. प्र. सं. के संदर्भ में सक्षम अधिकार क्षेत्र की न्यायालय द्वारा रिकॉर्ड पर लाने का आदेश दिया जाता है। आदेश 22 नियम 9 (3) दं. प्र. सं. में यह प्रावधान किया गया है कि सीमा अधिनियम, 1963 की धारा 5 के प्रावधान आदेश 22 दं. प्र. सं. के नियम 9 के उप-नियम (2) के तहत दायर आवेदन पर लागू होंगे। दूसरे शब्दों में, उपशमन को रद्द करने के आवेदन को समान रूप से माना जाना चाहिए और सीमा अधिनियम की धारा 5 के तहत देरी को माफ करने के लिए प्रतिपादित सिद्धांतों को समान रूप से लागू किया जाना चाहिए।”

मेसर्स बोर्स ब्रदर्स (उपरोक्त) के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय के पास इस विषय पर सम्पूर्ण न्याय-कानूनों की समीक्षा करने का अवसर था। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने एक बार फिर "उचित कारण" और "पर्याप्त कारण" के बीच के अंतर पर ध्यान दिया जैसा कि ए. आई. आर. 1964 एस. सी. 993 में दर्ज **अर्जुन सिंह बनाम**

मोहिंद्र कुमार के मामले में कहा गया था और बासवराज और एक अन्य बनाम विशेष भूमि अधिग्रहण अधिकारी (2013) 14 एस. सी. सी. 81 के मामले में दिए गए फैसले के पैराग्राफ 10,11,12,13,14 और 15 का हवाला दिया जिन्हे नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है:-

"10. *अर्जुन सिंह बनाम मोहिंद्र कुमार* [ए. आई. आर. 1964] एस. सी. 993] में इस न्यायालय ने "उचित कारण" और "पर्याप्त कारण" के बीच के अंतर को समझाया और कहा कि प्रत्येक "पर्याप्त कारण" एक उचित कारण है और इसके विपरीत भी। हालाँकि, यदि कोई अंतर है तो यह केवल यह हो सकता है कि उचित कारण की आवश्यकता का अनुपालन "पर्याप्त कारण" की तुलना में कम प्रमाण पर किया जाए।

11. "पर्याप्त कारण" शब्द को यह सुनिश्चित करने के लिए एक उदार व्याख्या दी जानी चाहिए कि पर्याप्त न्याय किया जाए, *लेकिन केवल तब तक जब तक लापरवाही, निष्क्रियता या ईमानदारी की कमी का आरोप संबंधित पक्ष पर नहीं लगाया जा सके*, चाहे पर्याप्त कारण प्रस्तुत किया गया हो या नहीं, किसी विशेष मामले के तथ्यों के आधार पर इसका निर्णय लिया जा सकता है और कोई भी निश्चित सूत्र संभव नहीं है। (*मदनलाल बनाम श्यामलाल* [(2002) 1 एस. सी. सी. 535:ए. आई. आर. 2002 एस. सी. 100] और *रामनाथ साओ बनाम गोवर्धन साओ* [(2002) 3 एस. सी. सी. 195:ए. आई. आर. 2002 एस. सी. 1201])

12. यह एक स्थापित कानूनी प्रस्ताव है कि परिसीमा का कानून किसी विशेष पक्ष को कठोर रूप से प्रभावित कर सकता है, लेकिन जब कानून इस तरह से निर्धारित करता है तो उसे पूरी कठोरता के साथ लागू

किया जाना चाहिए। न्यायालय के पास न्यायसंगत आधार पर सीमा की अवधि बढ़ाने की कोई शक्ति नहीं है। "किसी संवैधानिक प्रावधान से निकलने वाला परिणाम कभी भी बुरा नहीं होता है।

न्यायालय के पास उस प्रावधान को नजरअंदाज करने की कोई शक्ति नहीं है ताकि वह उस प्रावधान के लागू होने से होने वाली परेशानी से राहत पा सके। "वैधानिक प्रावधान किसी विशेष पक्ष को कठिनाई या असुविधा पहुंचा सकता है लेकिन न्यायालय के पास इसे पूरी तरह से लागू करने के अलावा कोई विकल्प नहीं है। विधिक सूक्ति "इयूरा लेक्स सेड लेक्स" जिसका अर्थ है "कानून कठोर है लेकिन यह कानून है", ऐसी स्थिति में लागू होता है। यह लगातार माना गया है कि किसी कानून की व्याख्या करते समय "असुविधा" एक निर्णायक कारक नहीं है जिस पर विचार किया जाना चाहिए।

13. सीमा का कानून सार्वजनिक नीति पर आधारित है, इसका उद्देश्य समुदाय में शांति सुनिश्चित करना, धोखाधड़ी और झूठी गवाही को दबाना, कार्यकुशलता में तेजी लाना और उत्पीड़न को रोकना है। यह अतीत के उन सभी कृत्यों को दफनाने का प्रयास करता है जो अस्पष्ट रूप से उत्तेजित नहीं हुए हैं और समय के साथ पुराने हो गए हैं। हैल्सबरी के लॉज ऑफ इंग्लैंड, वॉल्यूम 28, पृ. 266 के अनुसार,

"605. परिसीमा अधिनियमों की नीति।—न्यायालयों ने परिसीमा अधिनियमों के अस्तित्व का समर्थन करने वाले कम से कम तीन अलग-अलग कारण व्यक्त किए गए हैं, अर्थात् (1) लंबे समय से निष्क्रिय दावों में न्याय की तुलना में क्रूरता अधिक

होती है, (2) प्रतिवादी ने एक पुराने दावे को गलत साबित करने के लिए साक्ष्य खो दिया हो, और (3) कार्रवाई के अच्छे कारणों वाले व्यक्तियों को उचित परिश्रम के साथ आगे बढ़ाना चाहिए।”

असीमित सीमा असुरक्षा और अनिश्चितता की भावना को जन्म देगी, और इसलिए, सीमा लंबे समय तक आनंद लेने से समानता और न्याय में जो कुछ भी हासिल किया गया हो या जो किसी पक्ष की अपनी निष्क्रियता, लापरवाही या बाधाओं से खो गया हो सकता है, उसमें गड़बड़ी या अभाव को रोकती है।(देखें: *पोपट और कोटेचा प्रॉपर्टी बनाम एस. बी. आई. कर्मचारी संघ* [(2005) 7 का एस. सी. सी.510], *राजेंद्र सिंह बनाम सांता सिंह* (1973) 2 एस. सी. सी. 705:ए. आई. आर. 1973 एस. सी. 2537] और *पुंडलिक जालम पाटिल बनाम जलगाँव मध्यम परियोजना* [(2008) 17 एस. सी. सी. 448: (2009) 5 एस. सी. सी. (सी. आई. वी.) 907]

14. *पी. रामचंद्र राव बनाम कर्नाटक राज्य* [(2002) 4 एससीसी 578:2002 एस. सी. सी. (सी. आर. आई) 830:ए. आई. आर. 2002 एस. सी. 1856] में इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि न्यायिक रूप से सीमा के सिद्धांतों को शामिल करना कानून बनाने के सामान है और *अब्दुल रहमान अंतुले बनाम आर. एस. नायक* [(1992) 1 एस. सी. सी. 225:1992 एससीसी (सीआरआई) 93:ए. आई. आर. 1992 एस. सी. 1701] में निर्धारित कानून के विपरीत होगा।

15. इस मुद्दे पर कानून को इस प्रभाव से संक्षेपित किया जा सकता है

कि जहां कोई मामला न्यायालय में सीमा से परे न्यायालय में प्रस्तुत किया गया है, आवेदक को न्यायालय को यह बताना होगा कि "पर्याप्त कारण" क्या था जिसका अर्थ है एक उचित और पर्याप्त कारण जो उसे सीमा के भीतर न्यायालय का दरवाजा खटखटाने से रोकता है। यदि कोई पक्ष लापरवाही करता हुआ पाया जाता है, या मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में उसकी ओर से ईमानदारी का अभाव पाया जाता है, या कर्मठतापूर्वक कार्य नहीं किया है या निष्क्रिय रहा है, तो देरी को माफ करने के लिए एक उचित आधार नहीं हो सकता है। किसी भी न्यायालय को किसी भी शर्त को लागू करके इस तरह की अत्यधिक देरी को माफ करने में उचित नहीं ठहराया जा सकता है। आवेदन पर निर्णय केवल विलंब की माफी के संबंध में इस न्यायालय द्वारा निर्धारित मापदंडों के अंतर्गत ही किया जाना है। यदि किसी वादी को बिना किसी औचित्य के समय पर न्यायालय में आने से रोकने का कोई पर्याप्त कारण नहीं था, तो कोई भी शर्त रखना, वैधानिक प्रावधानों का उल्लंघन करते हुए एक आदेश पारित करने के बराबर है और यह विधायिका की पूरी तरह से अवहेलना करने के समान है।"

इस विषय पर न्यायिक निर्णयों को देखने के बाद जब यह न्यायालय वर्तमान मामले में दिखाए गए कारण को माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानूनों पर लागू करता है, तो इस न्यायालय की यह सुविचारित राय है कि दिखाए गए कारण "उचित कारण" या "पर्याप्त कारण" की श्रेणी में नहीं आते हैं जैसा कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों में परिकल्पित है।

दिखाया गया कारण असंतोषजनक है और इसमें सच्चाई का अभाव है। इस

प्रकार, अंतर्वर्ती आवेदन खारिज किया जाता है।

परिसीमा याचिका को खारिज करने के परिणामस्वरूप, यह अपील अमान्य हो जाती है।

(राजीव रंजन प्रसाद, न्यायमूर्ति)

रजनीश/अरविंद

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नहीं किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।